

अन्तरिक्षस्थानीय देवता : मरुदगण

अशोक कुमार वर्मा
शोधच्छात्र संस्कृत विभाग,
इलाहाबाद विश्वविद्यालय इलाहाबाद

वेदों को अपौरुषेय कहा गया है। भारतीय धर्म, संस्कृति एवं सभ्यता का भव्य प्रासाद जिस दृढ़ आधारशिला पर प्रतिष्ठित है, उसे वेद के नाम से जाना जाता है। भारतीय आचार-विचार, रहन-सहन तथा धर्म-कर्म को भलीभाँति समझने के लिए वेदों का ज्ञान बहु आवश्यक है। सम्पूर्ण धर्म-कर्म का मूल तथा यथार्थ कर्तव्य-धर्म की जिज्ञासा वाले लोगों के लिए 'वेद' सर्वश्रेष्ठ प्रमाण है। 'वेदोऽखिलो धर्ममूलम्, धर्मं जिज्ञासमानानां प्रमाणं परमंश्रुतिः।'¹ जैसे शास्त्रवचन इसी रहस्य का उद्घाटन करते हैं। वस्तुतः 'वेद' शाश्वत-यथार्थ ज्ञान राशि के समुच्चय हैं, जिसे साक्षात्कृतधर्मा ऋषियों ने अपने प्रातिभ चक्षु से देखा है— अनुभव किया है।

मन्त्र द्रष्टा ऋषियों ने अपने साक्षात्कृत मन्त्रों में जिसकी स्तुति की है— जिसका वर्णन किया है, वे उस मन्त्र के देवता कहे जाते हैं। इन्हीं देवताओं को, अन्तरिक्ष स्थानीय, पृथिवीस्थानीय, एवं द्युस्थानीय भागों में विभाजित किया गया है।

अन्तरिक्षस्थानीय देवताओं में मरुदगण का प्रमुख स्थान है। इनके स्वरूप के विषय में सर्वप्रथम जो विशेषता अभिलक्षित होती है, वह है उनका जाज्वल्यमान, देदीप्यमान भास्वर रूप। वे सूर्य की रश्मियों जैसे चमकते हैं। तारों से चमकते आकाश से प्रतीत होते हैं। कभी वे राजाओं के समान सुदर्शन दृष्टिगत होते हैं, तो कभी धनी वरों के समान स्वर्णभरणों से सुसज्जित शरीर वाले लगते हैं—

वरा इवेद् रैवतासो हिरण्यैरभिस्वद्याभिस्तन्वः पिपिश्रे ।²

उनके शरीर पर आभूषणों की भरमार है, सिरों पर स्वर्णमुकुट हैं। वे आभूषणों के कारण ही देदीप्यमान नहीं हैं अपितु स्वभावतः प्रभायुक्त हैं। अपनी इस स्वाभाविक दीप्ति के कारण मरुदगण अग्नि के

साथ घनिष्ठ रूप से सम्बद्ध हुए हैं। वे अग्नि के समान—जाज्वल्यमान हैं। मरुदगण अग्निश्रियः, अग्निभ्राजसः ही नहीं हैं अपितु स्वयं अग्नयः ही हैं। मरुदगण के स्वरूप में मानों अग्नि ही प्रकट हुआ है।

मरुदगण सूर्य की दीप्ति से युक्त होकर अपने प्रभावों के साथ दूर—दूर तक फैल गये हैं। विद्युत के साथ मरुतों का अतीव घनिष्ठ सम्बन्ध है। वे विद्युत की मुस्कान से उत्पन्न हुये हैं। वे हाथों में बिजलियाँ लिये हैं। ‘विद्युतो गमस्त्योः शिप्राः शीर्षसु वितना हिरण्ययीः’। निनाद करते हुए मरुतों के झपटते रथ अपनी ही विद्युत धाराओं से युक्त अग्नि के समान आगे बढ़ते हैं। वे विद्युत से दीप्त (विद्युन्महसः) हैं। मरुतों के रथ भी विद्युत के हैं। मुस्कराती विद्युत धारायें उनका अनुगमन करती हैं। मरुदगण स्वयं वायुओं और विद्युतों को प्रश्रय देते हैं। वे कन्धों पर जो ऋषियां धारण करते हैं, वे विद्युत धारायें ही हैं और इसलिये उन्हें ‘ऋषिविद्युतः’ कहा गया है। वे अपने आयुध से पर्वत को मानो कुल्हाड़ी से तोड़कर जल धारायें बहाते हैं।

“यत्रा वो विद्युद्रदति क्रिविर्दती रिणाति पश्वः सुधितेव बर्हणा ।”³

मरुदगण के साथ विद्युत के घनिष्ठ सम्बन्ध के कारण वृष्टि के साथ ही इनका सम्बन्ध जुड़ जाता है। वृष्टि लाना ही इनका प्रधान कर्म है। ऋक्संहिता में मरुत् सम्बन्धी शायद ही ऐसा कोई सूक्त होगा, जिसमें इनके वृष्टि—कर्म की ओर संकेत न हो। वृष्टि कर्म के कारण इन्हें विशेषणों की बहुत बड़ी संख्या प्राप्त हुई है। मरुदगण द्वारा बरसाये जलों को भी ‘मरुत्वतीः’ विशेषण से अलंकृत किया गया है। इनके द्वारा की गयी वृष्टि से जल प्राप्त करने वाली एक नदी का नाम ही ‘मरुद्वृधा’ (मरुतों—द्वारा बढ़ाई गयी) हो गया है। मरुदगण के इस वृष्टि—कर्म का आलंकारिक रूप से अनेक प्रकार से वर्णन किया गया है। दानशील, प्रभविष्णु, मरुदगण विदथों में घृतयुक्त दुग्ध उड़ेलते हैं। वे द्युलोक के कोश को पृथ्वी पर गिरा देते हैं। कहा गया है कि मरुदगण पर्जन्य को द्यावापृथिवी के बीच छोड़ देते हैं और सूखी धरती पर वृष्टियाँ आ पड़ती हैं—

आ यं नरः सुदानवो ददाशुषे दिवः कोशमचुच्यवुः ।

वि पर्जन्यं सृजन्ति रोदसी अनुधन्वना यन्ति वृष्टयः । ।⁴

अपने यजमानों के लिये मरुतों का सबसे बड़ा दान वृष्टि ही है। इस सन्दर्भ में मरुदगण के साथ कुछ आख्यान भी जुड़ गए हैं। आचार्य सायण ने एक आख्यायिका का उल्लेख किया है कि गौतम ऋषि ने कूप का उत्सेचन कर ऋषि को जल से तृप्त किया।⁵

परन्तु मरुतों की लायी वृष्टि साधारण नहीं है, वरन् झंझावात, गर्जन—तर्जन से युक्त है। ओजस्वी मरुतों के प्रयाण से पर्वत काँपते हैं, वनस्पतियाँ उखड़—उखड़ जाती हैं। वे मेघों के गर्जन की वाणी उच्चरित करते हैं। मरुदगण की यह वृष्टि उनके द्वारा प्रदत्त भेषज भी है।

लेकिन मरुतों का स्वरूप उपर्युक्त विशेषताओं में ही पर्यवसित नहीं हो जाता। मरुदगण का सम्बन्ध अन्य देवताओं से भी है। मरुदगण का अग्नि से सम्बन्धित स्तोता पितरोंवाला स्वरूप भी महत्वपूर्ण है।

इस तथ्य की ओर मैकडोनल महोदय ने संकेत अवश्य किया है लेकिन विशेष महत्व नहीं दिया है। ऋषि वसुश्रुत आत्रेय एक ऋक् में कहते हैं, “हे रुद्र! तुम्हारे सुन्दर—दीप्त जन्म के लिये मरुतों ने तुम्हारा परिशोधन किया।⁶ ऋषि श्यावाश्य आत्रेय अग्नि को सम्बोधित कर कहते हैं “अग्ने! इन प्रबुद्ध मरुतों के स्तोतों से उठ जागो।” इस प्रकार मरुदगण अग्नि के स्तोता हैं। यह अग्नि मरुतों का पिता भी है।⁷ वैदिक देव कल्पना से परिचितों के लिये देवता और उसके स्तोता के पिता—पुत्र सम्बन्ध या दोनों के तादात्म्य में आश्चर्य की बात नहीं है।

सूर्य अग्नि का ही एक रूप है और मरुतों से सम्बद्ध अग्नि की तुलना सूर्य से की गयी है। एक ऋक् में ऋषि ऋषभ वैश्वामित्र अग्नि का सूर्य से तादात्म्य और मरुतों को अग्नि के स्तोता के रूप में प्रस्तुत करते हुए कहते हैं—

मित्रश्च तुभ्यं वरुणः सहस्रोऽने विश्वेमरुतः सुम्नमर्चन ।

यच्छोचिषा सहसस्पुत्र तिष्ठा अभिष्ठितीः प्रथयन्त्सूर्योनृन् ॥⁸

मरुदगण की उपमा सूर्य रश्मियों से देने के कारण, उनसे अंधकार दूर करने की प्रार्थना की गयी है। मरुदगण की तुलना उषस् की किरणों से भी दी गयी है, ऋषि गृत्समद के शब्दों में, “(ये) शक्तिशाली (मरुदगण) उषा के समान अपनी ज्योति दीप्ति किरणों को समूह की अरुणाभाओं से अंधकार वाची रात्रि को अनावृत कर देते हैं।” इसी कल्पना की परम्परा में मरुतों को याज्ञियनाम धारण कर, अपने स्वभाव के अनुरूप नवजात शिशु (गर्भत्वम्) का रूप धारण करते बताया गया है। ये सब विचार उषःकाल में समिद्ध होती हुयी सूर्य—सदृश अग्नि से मरुतों का तादात्म्य स्पष्ट करती है।

मरुदगण सोम से भी घनिष्ठतया सम्बद्ध हैं। वे सोम के भी परिशोधक हैं। ऋत के विष्टप (स्थान) इस प्रियतम हविष (सोम) का पृश्न—मातरः (मरुदगण) दोहन करते हैं। इस प्रकार के उल्लेख ऋक्संहिता के नवम तथा अन्य मंडलों में भरे पड़े हैं। अग्नि और सोम के समान मरुदगण ‘स्तुति’ से भी सम्बद्ध हैं। मरुदगण स्वयं

द्युलोक के गायक तथा स्तुति का गान करते हुये के समान हैं। बृहस्पति को मरुत्वान् कहा गया है तथा इनके साथ मरुदगण का स्मरण किया गया है। इसका तात्पर्य यह है कि बृहस्पति के साथ भी मरुतों का सम्बन्ध है।

मरुदगण यज्ञ के साथ भी जुड़े हैं⁹ और इसलिए यज्ञ संस्था का श्रीगणेश करने वाले पूर्वजों के रूप में स्मृत हुये हैं। इसी प्रकार मरुतों को (अपने) सामों के द्वारा अंगिरसों के समान कहा गया है। उन्हें आयु नाम भी दिया गया है। यहाँ आयु से किन्हीं पूर्वजों का नाम अभिप्रेत होता है। अग्नि का परिशोधन करते हुए मरुतों का भृगुओं के साथ भी स्मरण किया गया है। इस प्रकार मरुदगण के स्वरूप के सम्बन्ध में मुख्य है उनका प्रकाशमय जाज्वल्यमान रूप, झांझावात से युक्त वृष्टि लाने का उनका कार्य, अग्नि को समिद्ध कर यज्ञ की कल्पना को जन्म देकर स्तुतियों द्वारा अग्नि की परिचर्या करने वाले, सोम का परिशोधन करने वाले पूर्वजों वाला रूप तथा इन सबका पारस्परिक घनिष्ठ सम्बन्ध सूर्य, इन्द्र, रुद्र सहित अन्य देवताओं से भी स्फुट होता है।

आचार्य यास्क ने देवगण का विभाजन द्युस्थानीय, मध्यस्थानीय और पृथिवीस्थानीय, इन तीन विभागों में किया और मरुदगण को मध्यस्थानीय कहा है। परवर्ती भारतीय परम्परा में मरुत शब्द वायु का ही पर्याय हो गया है।

अवेस्ता में वायु की कल्पना में भी उसे स्वर्ण मुकुट से युक्त, सुनहरे वस्त्र धारण करने वाला तथा स्वर्ण रथ पर सवार बताया गया है और उग्रता आदि के कारण उनका सम्बन्ध योद्धा—वर्ग से जोड़ा गया है। इसलिये संभवतः अवेस्ता में वायु के रूप में हमें मरुतों की भी कुछ झलक मिल जाती है। परन्तु पहले ही यह स्पष्ट हो चुका है कि 'मरुदगण' वायु से भिन्न देवता हैं और वायु उनके स्वरूप का अंशमात्र है। इस प्रसंग में यह भी द्रष्टव्य है कि सोमयाग में वायु को प्रातः समय स्मरण किया जाता है, जबकि मरुदगण को माध्यन्दिन और तृतीय समय में।

हिलेब्राण्ट तथा इ0एच0 मेयर आदि का मत है कि मरुदगण उत्पातकारी प्रेतात्मा हैं। इस मत की पुष्टि में कहा गया है कि कभी—कभी मरुतों के साथ रुद्रों या पितरों जैसा व्यवहार होता है। एक अवसर पर इन्द्र को आहुति देने के बाद उनके लिये एक भिन्न आहुति दी गयी है, और इसका कारण यह बताया गया है कि वास्तविक देवों के समान वे भोक्ता नहीं हैं। वे हिंसक, यज्ञ—नाशक और मनुष्यों के रोधक बनकर उभरते हैं। इसके अतिरिक्त उन्हें पक्षिरूप भी माना गया है और पक्षी प्रायः मृतात्मा होते हैं।¹⁰

विचार करने पर उपर्युक्त मत निराधार ही लगता है, क्योंकि यज्ञ के साथ घनिष्ठ रूप से सम्बद्ध मरुदगण न केवल इन्द्र के साथ ही अपितु स्वतंत्र रूप से भी हविष् के अधिकारी हैं। मरुतों के आयुध को

भयंकर अवश्य कहा गया है, परन्तु इस प्रकार के छिटपुट उल्लेख तो किसी भी देवता के विषय में मिल सकते हैं। मरुदगण को ऋषि या राजा का मार्गदर्शन करते हुए बताया गया है। पक्षिरूप में तो सूर्य, इन्द्र आदि को भी माना गया है, अतएव यह तर्क भी अमान्य है। मरुदगण अनिष्टकारक मृतात्माओं के रूप में नहीं माने जा सकते। कीथ तथा मैकडोनेल ने इस मत को सर्वथा अस्वीकार्य बताया है।

ऋग्वेद में रुद्र मूलतः मृत्यु के देवता प्रतीत होते हैं और मरुदगण उन्हीं से सम्बद्ध थे। संभवतः इसलिये इनका सम्बन्ध मृतात्माओं से जोड़ा गया। लेकिन वैदिक विकास में रुद्र शनैः—शनैः ही मृत्यु के देवता के स्वरूप से विलग हो गये और शीघ्र ही यम ने उनका स्थान ले लिया। केवल इतना ही नहीं प्रत्युत अन्य कारणों से रुद्र वैदिक देव में अनुचर के स्तर पर पहुँचे हुये प्रतीत होते हैं। यह अवश्य ही रुद्र एवं मरुतों के मौलिक सम्बन्ध के विघटन के कारण हुआ होगा। परिणामतः वैदिक ऋषियों ने मरुतों की पुराकथात्मक विचारधारा को सर्वथा नवीन महत्व प्रदान किया। ऐसा करते हुये, उन्होंने मरुदगण के मौलिक स्वरूप की विशिष्ट स्थिति उनके एक समान एवम् सुनियोजित समूह पर अतिशय बल दिया। मरुदगण भाइयों जैसे हैं, जिनमें न कोई ज्येष्ठ है और न कनिष्ठ, वे अवस्था में समान हैं तथा वे सदैव एक निश्चित संख्या वाले समूह में विचरण करते हैं।¹¹

मरुदगण की इन विशेषताओं ने विद्वानों के समक्ष अवश्य ही सैनिक वस्त्रों में सजे सुनियोजित वीरों का चित्र प्रस्तुत कर दिया होगा। अतः मरुतों के मौलिक स्वरूप की स्मृतियों के विलुप्त हो जाने पर वैदिक ऋषियों ने स्वाभाविक रूप से उन्हें युद्ध के देवता इन्द्र से सम्बद्ध करने की बात सोची होगी।¹²

इस प्रकार से रुद्र तथा मरुदगण सम्बन्ध पूर्वतर रूप है तथा इन्द्र एवम् मरुदगण के सम्बन्ध का विकास उत्तरवर्ती मरुदगण इन्द्र की शक्ति एवं उत्साह सम्बर्धित करते हुये दिखाये गये हैं। मरुदगण सामान्यतया इन्द्र की युद्ध में सहायता करते थे। ऋग्वेद के कतिपय उद्धरणों से यह प्रतिभासित होता है कि इन्द्र एवं मरुत् के पौराणिक सम्बन्ध की कतिपय स्थितियाँ एक युद्ध-स्वामी एवं उसके सेनापतियों के मध्य वास्तविक ऐतिहासिक परिवर्तनों के प्रतिबिम्ब हैं। कहीं—कहीं ऋग्वेद में इन्द्र एवं मरुतों के वैमनस्य का स्पष्ट संकेत है। फिर भी यह स्मरणीय रहना चाहिये कि ऐसी घटनायें अवश्य ही बहुत कम घटती रही होंगी।

वैदिक पुराकथा के विकास—सोपान में राष्ट्रीय युद्ध—देव इन्द्र के व्यक्तित्व पर एक सार्वभौम स्वरूप आरोपित हुआ और परिणामतः इन्द्र वर्षा के देवता बन गये, इससे मरुतों के स्वरूप में भी तदनुरूप परिवर्तन हुआ। युद्ध—देवता के विश्वस्त सेनापति अब वर्षा के देवता के सहायक बन गये। दूसरे शब्दों में मरुदगण झंझावात से सम्बद्ध देव समझे जाने लगे। यह वैदिक वाङ्मय में प्रस्तुत मरुदगण के स्वरूप—विकास

की अन्तिम दशा है और यही कारण है कि बाद की पुराणकथा में मरुदग्ण अधिकांशतः आँधी—तूफान के देव के रूप में चित्रित किये गये हैं।

लेकिन मरुदग्ण का अन्य देवताओं से सम्बन्ध गौरवपूर्ण रहा तथा उनके योगदान को महत्वपूर्ण स्थान प्रदान किया गया है। अगस्त्य सूक्तों के अध्ययन से स्पष्ट है कि इन्द्र के साथ प्रथमतः मरुतों की प्रतिद्वन्द्विता भी चली है और काफी संघर्ष के बाद ही मरुदग्ण पहले इन्द्र के सखा और फिर अनुचर बन गये।

मरुतों की संख्या का बहुत्व भी इनके किसी न किसी देवता के अनुगामी बनकर रहने में एक बड़ा कारण प्रतीत होता है और इसलिए वे रुद्र, अग्नि और इन्द्र के अनुगामी बने। इसी कारण आगे वे 'देवविशः' कहे गये तथा एकाध प्रसंग में वे अहुतादः भी बने।

परन्तु यह सब होने पर भी ध्यान देने की बात यह है कि भारतीय परम्परा मरुतों को त्रित आप्त्य—ऋभवः आदि की तरह कभी भी सर्वथा विस्मृत नहीं कर पायी। महाभारत, रामायण और पुराणों में मरुदग्ण को अन्य देवताओं के साथ जोड़कर विभिन्न कथाओं को रोचक बनाया गया तथा इसमें मरुतों को महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त है।

सन्दर्भ—ग्रन्थ—सूची

1. मनुस्मृति – 2 / 13
2. ऋग्वेद संहिता 5 / 60 / 4
3. ऋग्वेद संहिता 1 / 66 / 6
4. ऋग्वेद संहिता 5 / 53 / 6
5. ऋग्वेद संहिता 1 / 85 / 10
6. ऋग्वेद संहिता 5 / 3 / 3
7. ऋग्वेद संहिता 1 / 71 / 8
8. ऋग्वेद संहिता 3 / 14 / 4
9. ऋग्वेद संहिता 5 / 61 / 14
10. डॉ सूर्यकान्त—कृत अनुवाद वैदिक धर्म और दर्शन, पृष्ठ 189
11. ऋग्वेद संहिता 5 / 60 / 5
12. ऋग्वेद संहिता 1 / 169 / 2